जनसत्ता



# आतंक पर शिकंजा

मुंबई में नवंबर 2008 में हुए आतंकी हमले भारत के लिए त्रासद साबित हुए थे। लेकिन वह घटना दुनिया के उन देशों के लिए भी एक बड़ी चिंता का मुद्दा थी, जो आतंकवाद से पीड़ित रहे हैं। उन हमलों के दोषियों को सजा दिलाना इसलिए ज्यादा जरूरी महसूस किया गया कि आतंकियों ने देश के भीतर घुस कर एक सौ छियासठ से ज्यादा लोगों को मार डाला और एक तरह से युद्ध की स्थिति पैदा कर दी थी। उस हमले में कई अमेरिकी नागरिक भी मारे गए थे। उस मामले में कसाब को दी गई फांसी सहित कुछ अन्य आतंकियों और आरोपियों को सजा मिली। लेकिन इसकी साजिश रचने वाले आतंकियों के कई सहयोगियों को आज भी भारत की अदालतों में नहीं खींचा जा सका है। उन साजिशकर्ताओं में एक पाकिस्तान में जन्मे कनाडा के नागरिक तहव्वुर राणा को भी एक मुख्य आरोपी माना गया है। लेकिन वह फिलहाल उसी हमले में साजिशकर्ता और आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा को मदद मुहैया कराने वाले के रूप में दोषी पाए जाने के बाद अमेरिका में चौदह साल कैद की सजा काट रहा है। उसके भारत में प्रत्यर्पण के लिए काफी पहले से कोशिशें की जा रही थीं। अब जाकर भारत को इस दिशा में एक बड़ी कामयाबी मिलती दिख रही है, क्योंकि सरकार और ट्रंप प्रशासन के सहयोग के बाद तहव्वुर राणा के प्रत्यर्पण की संभावना बन रही है।

हालांकि इस मामले में एक पेच यह है कि मुंबई हमले की साजिश में वांछित आरोपी के रूप में भारत के लिए उसे यहां लाना मुश्किल होगा, क्योंकि अमेरिकी कानूनों के मुताबिक एक ही अपराध के लिए दो बार सजा नहीं दी जा सकती। ऐसे में भारत को फिलहाल तहव्वुर राणा के अन्य आपराधिक मामलों में लिप्त होने को आधार के रूप में प्रस्तुत करके प्रत्यर्पण की अपील करनी पड़ सकती है। गौरतलब है कि राणा पर नई दिल्ली के नेशनल डिफेंस कॉलेज और चाबड़ हाउसेज पर हमले की साजिश रचने के आरोप के अलावा धोखाधड़ी का भी एक मुकदमा दर्ज है। यानी भारत अगर इस आधार पर तहव्वुर राणा को यहां लाने में कामयाब हो जाता है तो उसे सजा दिलाने में आसानी हो सकती है। मगर अमेरिका की जटिल नौकरशाही और न्यायिक व्यवस्था की कसौटियों को देखते हुए उसके प्रत्यर्पण से संबंधित जरूरी दस्तावेजी कार्रवाई को जल्दी पूरा करने में कई अड़चनें आ सकती हैं। फिर भी मुंबई आतंकी हमले की दसवीं बरसी पर अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने जिस तरह साफ शब्दों में कहा था कि न्याय के लिए अमेरिका भारत के लोगों के साथ खड़ा है और हम कभी आतंकियों को जीतने नहीं देंगे, उसके मद्देनजर सहयोग की उम्मीद लाजिमी है।

यह छिपा नहीं है कि भारत में आतंकी हमलों में लिप्त कई आरोपी पाकिस्तान में आज भी बेरोकटोक अपना काम कर रहे हैं। पाकिस्तान भले ही अक्सर भारत को यह आश्वासन देता रहा है कि वह आतंकियों पर लगाम कसेगा, लेकिन हकीकत यह है कि आए दिन भारत में आतंकी वारदात को अंजाम देने वाले आमतौर पर पाकिस्तानी ठिकाने से ही काम करते पाए गए हैं। पाकिस्तान की पिछली सरकार में विदेश मंत्री रहे ख्वाजा आसिफ खुद यह स्वीकार कर चुके हैं कि लश्कर-ए-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद जैसे आतंकी संगठन अपनी गतिविधियों के लिए पाकिस्तान की जमीन का इस्तेमाल कर रहे हैं, उन पर बंदिश लगाना होगा। वहां के मौजूदा प्रधानमंत्री इमरान खान ने भी डेढ़ महीने पहले कहा कि आतंकवाद फैलाने वालों के प्रति आंखें मूंदना हमारे हित में नहीं है। मगर इस तरह की उम्मीद से भरी बातों का मतलब तभी है जब वास्तव में इन पर अमल किया जाए और आतंकवादियों के खिलाफ पाकिस्तान सरकार सख्त कार्रवाई करे।

# राहत और उम्मीदें

सरकार और जनता दोनों के लिए यह राहत की बात है कि महंगाई घटी है। सरकार ने महंगाई के जो आंकड़े जारी किए हैं वे बता रहे हैं कि पिछले महीने यानी दिसंबर 2018 में खुदरा महंगाई डेढ़ साल में सबसे कम रही। दिसंबर में खुदरा महंगाई का आंकड़ा 2.19 फीसद रहा, जबकि जनवरी 2018 में यह 5.07 फीसद था। पिछले साल के ज्यादातर महीनों में खुदरा महंगाई की दर चार फीसद के ऊपर ही रही थी। सरकारी आंकड़े बता रहे हैं कि पिछले महीने थोक महंगाई का आंकड़ा भी 3.8 फीसद रहा, जो पिछले आठ महीने में सबसे कम है। मुद्रास्फीति में यह कमी ईंधन और खाद्य पदार्थों के दाम घटने से आई है। महंगाई घटने का यह शुभ संकेत है और उम्मीदें लगाई जा रही हैं कि फरवरी में रिजर्व बैंक मौद्रिक नीति की समीक्षा करते वक्त महंगाई के इन आंकड़ों पर गौर करेगा। हालांकि लंबे अंतराल के बाद पेट्रोल और डीजल के दाम कुछ कम हुए, लेकिन पिछले एक हफ्ते में इनमें फिर से इजाफा होने लगा है। ऐसे में अगले कुछ महीनों में मुद्रास्फीति के आंकड़े इस न्यूनतम स्तर पर कब तक रह पाएंगे, कह पाना मुश्किल है।

पिछले साल महंगाई का सबसे बड़ा कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों को माना जा रहा था। मई, 2018 में थोक महंगाई की दर चार फीसद से ऊपर यानी 4.43 फीसद पर पहुंच गई थी, जो मई 2017 के बाद सबसे ज्यादा थी। इसलिए पिछले दो साल लोगों को महंगाई की मार झेलनी पड़ी थी। इसके अलावा 2018 में ज्यादातर समय पेट्रोल और डीजल ने रुलाया और इनके दामों ने अभूतपूर्व रेकार्ड बनाए। इससे आम जनता की नींद उड़ गई थी। कई शहरों में पेट्रोल नब्बे रुपए और डीजल सत्तर रुपए के स्तर को पार कर गया था। मई, 2018 में तो फलों और सब्जियों के दामों ने भी लोगों का बजट बिगाड़ दिया था। इसलिए सात-आठ महीने पहले के मुकाबले आज दाम जिस तरह नीचे आए हैं, वे राहत देने वाले हैं। हालांकि होता यह है कि आंकड़ों में तो महंगाई कम होती दिखती है, लेकिन बाजार में उपभोक्ता को उसका तत्काल फायदा होता नहीं दिखता। इस बार मानसून भी मेहरबान रहा और कृषि क्षेत्र का उत्पादन संतोषजनक रहा। इससे भी महंगाई का ग्राफ नीचे आने में मदद मिली।

महंगाई का असर उपभोक्ताओं पर तो पड़ता ही है, देश की अर्थव्यवस्था भी इससे खासी प्रभावित होती है। महंगाई से निपटने के लिए रिजर्व बैंक नीतिगत दरों में इजाफे का सहारा लेता है। पिछले साल दो बार ऐसा हुआ था जब महंगाई को काबू करने के लिए दो महीने में ही रिजर्व बैंक को नीतिगत दरें बढ़ानी पड़ गई थीं। साढ़े चार साल में पहली बार जून, 2018 में नीतिगत दरें बढ़ाई गई थीं। मुद्रास्फीति चार फीसद तक के दायरे में रहती है तो यह चिंता की बात नहीं होती। लेकिन जब यह इससे ऊपर जाने लगती है तो यह परेशानी का कारण बनना स्वाभाविक है। लेकिन अब जब महंगाई कम हुई है तो सबकी नजरें रिजर्व बैंक के अगले कदम पर हैं। केंद्रीय बैंक फरवरी में मौद्रिक नीति की समीक्षा करेगा और उम्मीद की जा रही है कि इस बार नीतिगत ब्याज दरों में कटौती की जा सकती है। व्यावसायिक बैंक अपनी ब्याज दरें रिजर्व बैंक की नीतिगत ब्याज दरों के अनुरूप ही तय करते हैं। ऐसे में ब्याज दरों में कटौती का सीधा असर उन उपभोक्ताओं पर पड़ता है जिन्होंने कर्ज ले रखा है और जो सस्ते कर्ज के इंतजार में रहते हैं। अगर नीतिगत दरों में कमी होती है तो इससे उद्योग जगत में भी जान आएगी और विकास का चक्का रफ्तार पकड़ेगा।

## कल्पमेधा

**अगर आप सुखी जीवन जीना चाहते हो तो उसे लक्ष्य से बांधो न कि लोगों से और चीजों से।**
**-अल्बर्ट आइंस्टीन**

# कर्ज माफी और सवाल

संजीव पांडेय

**देश में सबसे ज्यादा संख्या सीमांत किसानों की है। कुल किसान आबादी में सत्तर फीसद सीमांत किसान ही हैं। आधे से ज्यादा सीमांत किसानों ने गैर संस्थागत स्रोतों से कर्ज ले रखे हैं। कर्ज के गैर संस्थागत स्रोत किसानों का सबसे ज्यादा शोषण करते हैं, क्योंकि इसमें कमीशन एजेंट, व्यापारी, महाजन और आढ़तिए शामिल हैं। इनके दिए गए कर्ज पर ब्याज की दर पच्चीस से पैंतीस फीसद तक है। इससे किसानों की कमर टूट गई है।**

किसानों की कर्ज माफी को लेकर एक बार फिर हंगामा मचा हुआ है। कारपोरेट क्षेत्र के कर्ज घोटालों पर जहां रिजर्व बैंक सहित तमाम सरकारी एजेंसियां चुप बैठी रहती हैं, वहीं किसानों के हित की बात आते ही अर्थव्यवस्था चरमराने की दुहाई देने लगती हैं। छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश और राजस्थान में किसान कर्ज माफी को लेकर किए गए फैसले के बाद ही हलचल मची हुई है। रिजर्व बैंक तक इसकी आलोचना कर रहा है। रिजर्व बैंक के गवर्नर का कहना है कि किसानों की कर्ज माफी से पहले चुनी हुई राज्य सरकारें अपने खजानों की गुंजाइश देख लें। गवर्नर का यह भी कहना है कि किसानों की कर्ज माफी कर्ज संस्कृति पर असर डालती है। इससे कर्ज लेने वालों का भविष्य में व्यवहार खराब हो जाता है। हैरानी की बात तो यह है कि रिजर्व बैंक के गवर्नर कर्ज संस्कृति के असर पर बात करते हुए सिर्फ किसानों का उदाहरण देते हैं, लेकिन कारपोरेट घरानों के दस लाख करोड़ का एनपीए उन्हें याद नहीं रहता। एक मोटे अनुमान के मुताबिक एनपीए दस लाख करोड़ रुपए से ऊपर निकल गया है। सरकार और रिजर्व बैंक को इससे कोई परेशानी नहीं दिखती। लेकिन जैसे ही किसानों की कर्ज माफी की बात आई तो अधिकारियों को कर्ज माफी से कर्ज संस्कृति को नुकसान पहुंचने की संभावना दिखने लगी।

आज देश के किसानों पर लगभग ग्यारह लाख करोड़ रुपए का कर्ज है। अगर इसमें प्राथमिक कृषि समितियों के दिए गए कर्ज को भी जोड़ दें तो यह तेरह लाख करोड़ रुपए तक पहुंच जाता है। इसमें अल्पकालिक और दीर्घकालिक दोनों कर्ज शामिल हैं। किसान अल्पकालिक कर्ज माफी की ही मांग कर रहा है। अगर किसानों को दिए गए अल्पकालिक कर्ज ही माफ कर दिए जाएं तो उन्हें भारी राहत मिल जाएगी। वे आत्महत्या करने को बाध्य नहीं होंगे। हालत तो यह है कि किसान उत्पादों के मूल्य में भारी गिरावट के कारण, फसलों का लागत मूल्य भी नहीं वसूल पा रहे हैं, तो लिए गए कर्ज की वापसी कहां से कर पाएंगे? अगर देश में छोटे किसानों के दो लाख रुपए तक के कर्ज को माफ कर दिया जाएगा तो सरकार पर कोई ज्यादा बोझ नहीं पड़ेगा। छोटे किसानों के कुल कर्ज माफी से सरकार पर चार से साढ़े चार लाख करोड़ रुपए का ही भार पड़ेगा। केंद्र सरकार और राज्य सरकारें अगर मिल कर कर्ज माफी का भार उठा लें, तो देश के अन्नदाताओं को इससे भारी राहत मिलेगी।

हालांकि किसानों की कर्ज माफी कृषि क्षेत्र के संकट का दीर्घकालिक समाधान नहीं है, यह भी एक सच्चाई है। लेकिन किसानों को संकट से निकालने के लिए विकल्प क्या हों, इस पर सरकार आज तक गंभीर नहीं हुई है। यह सच्चाई है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य कागजों में है। किसान बाजार के हवाले है। वहां पर मनमर्जी से बाजार की शक्तियां किसानों की फसलों की कीमत तय कर रही हैं। प्याज उत्पादन में लागत अगर एक हजार रुपए प्रति क्विंटल है, तो उसे बाजार में मूल्य दो सौ रुपए प्रति क्विंटल मिल रहा है। इसलिए किसानों को इस समय फौरी राहत की जरूरत है। पहले भी कभी-कभार सरकारों ने किसानों के कर्ज माफ किए हैं। यूपीए की सरकार ने 2008 में किसानों की कर्ज माफी की घोषणा की थी। उस समय सरकार ने दावा किया था कि किसानों का बहत्तर हजार करोड़ रुपए का कर्ज माफ किया गया है। हालांकि बाद में नियंत्रक और महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट में पता चला कि किसानों की वास्तविक कर्ज माफी लगभग तिरपन हजार करोड़ रुपए की थी।

अगर सरकार किसानों के कर्ज माफ नहीं करना चाहती है, तो उनकी न्यूनतम आय का पक्का इंतजाम करे। किसानों के हित में कदम उठाने के लिए बहुत ज्यादा रकम की जरूरत नहीं है। मात्र दो लाख करोड़ रुपए के बजट में सालाना इंतजाम से किसानों की बड़ी आबादी को लाभ मिल सकता है। अगर केंद्र सरकार तेलंगाना में लागू रैयत बंधु योजना को ही पूरे देश में लागू कर दे तो किसानों की समस्या काफी हद तक कम हो सकती है। अगर कृषि में निवेश के लिए सरकार किसानों को प्रति हेक्टयर दस हजार रुपए सालाना अग्रिम सहायता राशि उपलब्ध कराए तो किसानों को उत्पादन की

भारी लागत से मुक्ति मिल जाएगी। किसान इस राशि से खाद, बीज आदि खरीद सकेंगे। इस पैसे से खेत में काम करने वाले श्रमिकों का खर्च भी किसान निकाल लेंगे। अगर सरकार देश में बीस करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में फसल बोए जाने वाली भूमि को इस योजना के अधीन लाएगी तो सरकार को इसके लिए दो लाख करोड़ रुपए तक की जरूरत पड़ेगी। इस योजना को अगर लागू किया जाएगा तो कर्ज माफी और न्यूतनम समर्थन मूल्य को लेकर किसान परेशान नहीं होंगे। जो फसलें न्यूनतम समर्थन मूल्य के अधीन हैं, जमीनी स्तर पर उनकी खरीद ही नहीं होती। देश में सिर्फ गेहूं और धान की खरीद की गारंटी न्यूनतम समर्थन मूल्य के तहत है, वह भी पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में। पूर्वी राज्यों, खासकर बंगाल, बिहार और ओड़िशा आदि में किसान न्यूनतम समर्थन मूल्य पर धान नहीं बेच पाते। वहां भारी भ्रष्टाचार है। मजबूरी में इन राज्यों में किसान बिचौलिए को धान बेचने को बाध्य होता है, वहीं बिचौलिए किसानों से खरीदे गए धान को पंजाब, हरियाणा और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में न्यूनतम समर्थन मूल्य पर बेच देते हैं। दलहन समेत कई और फसलों को न्यूतनम समर्थन मूल्य तो बाजार में मिल ही नहीं रहा है।

किसानों की समस्या एक नहीं, कई हैं। सबसे ज्यादा मुसीबत में सीमांत किसान हैं। मुसीबत में खेतिहर मजदूर भी हैं और अपनी बदहाली से तंग आकर आत्महत्या कर रहे हैं। सीमांत किसानों को महाजन, कमीशन एजेंटों और व्यापारियों के कर्ज ने परेशान कर रखा है। देश में सबसे ज्यादा संख्या सीमांत किसानों की है। कुल किसान आबादी के सत्तर फीसद किसान सीमांत किसान ही हैं। आधे से ज्यादा सीमांत किसानों ने गैर संस्थागत स्रोतों से कर्ज ले रखे हैं। कर्ज के गैर संस्थागत स्रोत किसानों का सबसे ज्यादा शोषण करते हैं, क्योंकि इसमें कमीशन एजेंट, व्यापारी, महाजन और आढ़तिए शामिल हैं। इनके दिए गए कर्ज पर ब्याज की दर पच्चीस से पैंतीस फीसद तक है। इससे किसानों की कमर टूट गई है। हालांकि बड़े किसान ज्यादातर कर्ज संस्थागत स्रोतों से लेते हैं। बड़े किसानों के वर्ग में आने वाले अस्सी फीसद किसान संस्थागत स्रोतों से कर्ज ले रहे हैं, जिसमें सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के बैंक शामिल हैं। एक और सच्चाई भी भयावह है। अगर वर्ष 2017 के आंकड़ों पर गौर करें तो संस्थागत स्रोतों से छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज की हिस्सेदारी सिर्फ चालीस फीसद थी, जबकि बड़े किसान कुल बांटे गए कर्ज का साठ फीसद हिस्सा अपने खाते में ले गए। संस्थागत स्रोतों से छोटे किसानों को चार लाख चौंतीस हजार करोड़ रुपए का कर्ज दिया गया था। इसमें ज्यादातर छोटे किसान शामिल थे, जिन्हें दो लाख रुपए तक का फसली कर्ज दिया गया था। जबकि बड़े किसानों को छह लाख करोड़ रुपए कर्ज दिया गया था। बड़े किसानों के बीच दो लाख रुपए से एक करोड़ रुपए तक का लगभग पांच लाख साठ हजार करोड़ रुपए कर्ज दिया गया। एक करोड़ रुपए से ज्यादा कर्ज की श्रेणी में एक लाख सैंतीस हजार करोड़ रुपए का कर्ज दिया गया। ऐसे में सवाल है कि कर्ज का क्या सारा बोझ ढोने के लिए छोटा किसान ही है?

# आधुनिकता के समांतर

अमित चमड़िया

**दुनिया मेरे आगे**

आधुनिकता पर होने वाली बातचीत में जातियों की अहमियत या इससे जुड़ी समस्या के कम होने का हवाला अक्सर दिया जाता है। बताया जाता है कि अब सामाजिक भेदभाव पुराने समय बातें हो चली हैं। लेकिन क्या जाति संरचना और इससे जुड़े तत्त्व सचमुच इस 'आधुनिक' समय में धुंधले हो रहे हैं? यह सवाल स्कूल में पढ़ रहे किसी बच्चे से अगर किया जाए तो निश्चित रूप से उसका जवाब सकारात्मक होगा। आखिर उनके स्कूल की किताबें भी यही बताती हैं। लेकिन इन्हीं किताबों को पढ़ कर बड़े होने के बाद लोग अलग-अलग जातियों के दायरे में जीते हैं, जातियों में बंटे संगठन के सदस्य भी हो जाते हैं। सवाल है कि क्या किताबों की बातें अपना प्रभाव मजबूती से नहीं जमा पा रही हैं, या फिर और कोई बात किताबों से ज्यादा अपना प्रभाव लोगों पर जमाने में सफल हो रही है?

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में जन्म पर आधारित होते हुए भी जाति अपने आप में कोई ठहरा हुआ शब्द नहीं है। इसकी गतिशीलता अलग-अलग रूप में नजर आती है। जो जातियां पारंपरिक रूप में जाति संरचना में ऊपर समझी जाती हैं या समाजशास्त्री एमएन श्रीनिवास की अवधारणा के मुताबिक 'डोमिनेंट कास्ट' (प्रभुत्वशाली जाति) की श्रेणी में आती हैं, वे समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए नए-नए तरीके अपना रही हैं। दो नई चीजें स्पष्ट दिखाई दे रही हैं। पहली, इन जातियों ने अपनी-अपनी जाति के नायकों को इतिहास के पन्नों से निकलना शुरू कर दिया है और उनकी जन्मतिथि और पुण्यतिथि को समारोह के साथ मनाने लगे हैं। इसकी वजह अपनी जाति की पहचान को और ज्यादा मजबूती देना है, ताकि जाति संरचना में निचले पायदान पर समझी जाने वाली जातियों में अगर किसी प्रकार की सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता बढ़ती है तो भी वे इस तरह के समारोह के बहाने अपनी जाति को और ज्यादा मजबूत पहचान दे सकेंगे। शायद यह हो भी रहा है कि पिछड़ी और दलित जातियों के बीच जिस तरह से जागरूकता आ रही है, उसी तरह से उच्च कही जाने वाली जातियों और 'डोमिनेंट कास्ट' के नए-नए प्रतीक सामने प्रकट हो रहे हैं।

इसका प्रमाण हिंदी प्रदेशों में आमतौर पर देखने को मिलता है। लगभग हर दिन किसी न किसी जाति विशेष से जुड़े 'नायक' की खबर हम सबको पढ़ने को मिल सकती है। खास बात यह रहती है कि उस जन्म तिथि या पुण्य तिथि को मनाने वालों की सूची में शायद ही किसी भिन्न जाति के लोग होते हैं। इन खबरों को पढ़ कर किसी भी इतिहास के 'नायक' की जाति का पता आसानी से चल जाता है। जातीय संगठन ज्यादा मुखर होकर सामने आने लगे हैं। अलग-अलग जाति सभा से जुड़े कार्यक्रम की खबरें आम हो चली हैं।

दूसरी बात यह है कि आजकल कई लोग अपने दोपहिया वाहन यानी मोटरसाइकिल आदि के आगे वाली नंबर प्लेट पर गाड़ी के नंबर की जगह अपनी जाति का नाम लिखवा रहे हैं। साथ ही पीछे वाली नंबर प्लेट पर भी बड़े अक्षर में जाति का नाम और उसके बाद गाड़ी का नंबर लिखा हुआ आसानी से दिख जाता है। शायद उनकी जाति का दर्शाया गया नाम गाड़ी की पहचान बताने के लिए काफी है! यह चलन गांव-कस्बों से लेकर दिल्ली जैसे महानगर की सड़कों पर दौड़ रही दोपहिया गाड़ियों के पीछे या आगे जातियों के नाम- ब्राह्मण, क्षत्रिय, जाट, गुर्जर, अहीर जैसे शब्द आसानी से लिखे हुए मिल जाते हैं। इतना ही नहीं, चारपहिया गाड़ी यानी कारों के पीछे वाले शीशे पर भी किसी जाति विशेष से जुड़े प्रतीक या जाति की पहचान बताने वाले उपनाम लिखे हुए रहते हैं। इसके अलावा, 'महाकाल', 'महादेव', 'संकट मोचन' जैसे शब्द भी काफी प्रचलित हैं। शरीर की अलग-अलग जगहों पर टैटू गुदवाना 'आधुनिकता' की पहचान समझा जाता है। लेकिन लोग अपनी-अपनी जाति के नाम भी हाथों पर गुदवाने लगे हैं।

इसका मतलब स्पष्ट है कि जाति आधारित पहचान और 'आधुनिकता' साथ-साथ चल रही हैं। मैं अक्सर सोचता हूं कि आधुनिकता के बाने में लिपटे लोगों द्वारा इस तरह सार्वजनिक रूप से जातियों के नाम बेहिचक प्रदर्शित करना क्या अपने सामाजिक वर्चस्व को स्थापित करने की प्रक्रिया है? समाज में जिन जातियों को अति निम्न दर्जा दिया गया और जो उनके लिए एक बड़ी त्रासदी भी है, उनके लोग जब यह सब देखते होंगे तो क्या सोचते होंगे? जाति हमारे अंदर बड़ी जटिलता पूर्वक घुली हुई है और एक बड़ी पहचान के रूप में हमेशा सबसे आगे खड़ी रहती है। वर्तमान समय में जाति आधारित व्यवस्था और जातिगत पहचान समाज में नए रूप में ज्यादा मजबूत हो रही है। फिर आने वाली पीढ़ी से हम जातिगत संरचना के बारे में बात करने से क्यों मुंह मोड़ते हैं? अगर जाति व्यवस्था से समाज में पड़ रहे प्रभाव को कम या खत्म करना है तो आने वाली पीढ़ी से इस मुद्दे पर खुले दिमाग से बात करनी होगी, न कि अपना मुंह छिपाना होगा।

# सुधार की दरकार

बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून में बदलाव से जुड़ा विधेयक संसद से पारित हो गया है। इसमें आठवीं कक्षा तक के छात्रों को योग्यता के आधार पर उत्तीर्ण करने और 'नो डिटेंशन नीति' वापस लेने से संबंधित प्रावधान किया गया है। अभी तक इस नीति के अनुसार आठवीं कक्षा तक के छात्रों को अनुत्तीर्ण नहीं किया जा सकता है। खास बात यह है कि इस संशोधन में छात्र के फेल होने पर भी उसे परीक्षा देने का दो महीने के भीतर एक मौका और देने का प्रावधान भी जोड़ा गया है।

फेल न करने की नीति का उद्देश्य था कि ज्यादा से ज्यादा बच्चों को अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने का मौका मिले। इसके साथ ही परीक्षा के मानसिक दबाव से भी बच्चों को मुक्त करना था ताकि शैक्षिक प्रदर्शन के अतिरिक्त व्यक्तित्व विकास के अन्य पहलुओं पर भी स्कूलों में ध्यान केंद्रित किया जा सके। इसमें कमजोर बच्चों में सुधार के लिए सीसीई (कंटीन्युअस एंड कंप्रेहेंसिव इवैल्यूएशन) की व्यवस्था दी गई थी लेकिन दुर्भाग्यवश अधिकांश राज्यों के स्कूलों में इस दिशा में कोई काम ही नहीं हुआ।

शिक्षा की गुणवत्ता पर असर पड़ने की वजह से छात्रों को कक्षा आठ तक फेल न करने की नीति को विभिन्न मंचों से समाप्त करने की मांग लगातार उठ रही थी। कहा गया कि इसकी वजह से बच्चों के सीखने पर सबसे अधिक असर पड़ रहा है और नो डिटेंशन पॉलिसी का मूल उद्देश्य कहीं गुम हो गया है। हालांकि कुछ शिक्षाविदों ने इसका विरोध भी किया है और कहा है कि नो-डिटेंशन पॉलिसी रद्द करने के सरकार के फैसले से आरटीई एक्ट, 2009 काफी हद तक कमजोर हो जाएगा। उन्होंने आशंका जताई है कि फेल होने की नीति दोबारा शुरू होने से छात्र तेजी से स्कूल छोड़ने लगेंगे। शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने के नौ साल बाद भी स्कूली शिक्षा बहुत-सी चुनौतियों से दो-चार है जैसे पर्याप्त और प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी, शिक्षकों से दूसरे काम कराया जाना, नामांकन के बाद स्कूलों में बच्चों की रुकावट और बीच में पढ़ाई छोड़ने देने की उच्च दर और संसाधनों की कमी जैसी समस्याएं बनी हुई हैं। बच्चों के सीखने की उम्र तीन साल के बाद शुरू हो जाती है। लेकिन शिक्षा के अधिकार कानून में छह वर्ष से कम आयु वर्ग के बच्चों का कोई जिक्र नहीं किया गया है यानी इस कानून में बच्चों की प्री-एजुकेशन को नजरअंदाज किया गया है। अब वक्त की मांग है कि शिक्षा के अधिकार कानून में संशोधन करके प्राइवेट स्कूलों की तरह सरकारी स्कूलों में भी छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए प्री-स्कूलिंग की व्यवस्था की जाए। ऐसा करना इसलिए भी जरूरी है कि निजी स्कूलों में प्री-स्कूल में बच्चों को जो सुविधाएं और सीखने के अवसर मिल रहे हैं वे सरकारी स्कूलों के बच्चों को नहीं मिलते। ऐसे में साधनविहीन परिवारों के बच्चों और संसाधन वाले परिवारों के बच्चों में छह साल पहले ही एक फर्क आ जाता है। आगे बढ़ कर एक प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया में दोनों कैसे एक-दूसरे की बराबरी कर सकते हैं!

हमें प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए सरकारी स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बेहद ध्यान देने की जरूरत है ताकि अधिक से अधिक शिक्षकों तक शिक्षण के अत्याधुनिक तरीकों व शोध को आसानी से पहुंचाया जा सके। स्थायी शिक्षकों के बजाय अनुबंध/अस्थायी शिक्षकों की उपस्थिति शिक्षा की गुणवत्ता के बिगड़ने में योगदान करती है। गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए अस्थायी शिक्षकों पर निर्भरता को दूर किया जाना चाहिए।

● *कैलाश एम बिश्नोई, जोधपुर*

## भ्रष्टाचार की जड़

भारत में भ्रष्टाचार और अन्य कुकृत्य करने में यह बात बहुत ही उत्प्रेरक है कि जीवन भर जघन्य अपराध, घूसखोरी, बेईमानी, भ्रष्टाचार आदि कुकर्म करते रहो और फिर किसी कथित तीर्थस्थल पर जाकर बछिया या गाय दान कर उसकी पूंछ पकड़ कर अपने सभी कुकर्मों और पापों से मुक्त हो जाओ! ऐसी सोच और पाखंड भारत में भ्रष्टाचार के सबसे बड़े सहायक तत्त्व हैं। इन्हें धर्म के कथित ठेकेदार जन-जन में बचपन से ही ठूंस-ठूंस कर भर देते हैं। ऐसी सोच के रहते भारत के भ्रष्टाचार मुक्त होने की कल्पना दिवास्वप्न ही है।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

## बदलाव जरूरी

भारत दुनिया की छठी बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जा रहा है। अनुमान है कि 2019 में जीडीपी 7.5 फीसद होने वाला है। 2018 में देश की विकास दर 7.2 फीसद थी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार हमारे देश की अर्थव्यवस्था तेज गति से बढ़ रही है। कच्चे तेल की कीमत में गिरावट के कारण भारत को अत्यधिक मुनाफा होगा। इन सब आंकड़ों के देखकर कहा जा सकता है कि हाल के कुछ वर्षों में भारत ने अच्छा आर्थिक सुधार किया है। इस बीच वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) और नोटबंदी ने कारोबारियों को झटके भी दिए हैं लिहाजा, अर्थव्यवस्था को रफ्तार में बनाए रखने के लिए जीएसटी में बदलाव करना आवश्यक है। इतना वक्त गुजरने के बाद भी जीएसटी फार्म की जानकारी सभी लोगों को नहीं है। आम कारोबारियों के लिए यह बहुत पेचीदा है। इस प्रक्रिया को सरल बनाने का प्रयास करना चाहिए। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था और तेज रफ्तार पकड़ेगी।

● *नेहा कुमारी, भोरे, गोपालगंज, बिहार*

## भाषिक प्रहार

भारतीय ही नहीं विश्व राजनीति में भी विरोधियों पर भाषिक प्रहार खूब होते आए हैं। आजादी के बाद भारतीय राजनीति में नेहरू, पटेल और लोहिया एक-दूसरे का विरोध करते थे। भारतीय भाषिक तंज भी करते थे लेकिन एक दूसरे के लिए कभी भी कहीं भी उन्होंने स्तरहीन भाषा का प्रयोग नहीं किया। उस त्रिमूर्ति के बाद भी भारतीय राजनीति में विरोधियों पर स्तरहीन भाषिक आक्रमण अपवाद ही रहे। लेकिन पिछले तीन-चार आम चुनाव में विरोधियों पर जिस स्तरहीन भाषा में हमले हुए हैं वैसी भाषा अपवाद रूप में ही अन्य देशों में मिलेगी। जो भाषा हमारे नेता विरोधियों के लिए बोल रहे हैं, एक-दूसरे पर तंज कस रहे हैं वह शिक्षित-सभ्य समाज में स्वीकार्य नहीं है। हमारे यहां विरोधियों को चोर, कसाई, लल्लू, पप्पू, मौत का सौदागर, गधा आदि तक कह दिया जाता है। धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता भी सियासी हमलों के हथियार बना लिए गए हैं। श्मशान और कब्रिस्तान, मंदिर-मस्जिद भी अस्त्र बन गए हैं। राजनीति में आने और सत्ता पाने के लिए नेता स्तरहीन भाषा का प्रयोग करते रहते हैं जिससे उन्हें बाज आना चाहिए।

● *शिवानी त्यागी, पंचलोक, ट्रोनिका सिटी*

**चौपाल**

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com